अजगर करे न चाकरी

प्रेमपाल शर्मा

अजगर करे न चाकरी

मैं इतने ठंडेपन से कभी पेश नहीं आया था।

https://www.hindiadda.com/ajagar-kare-na-chakari/

यहाँ तक कि कमरे में घुसने से पहले ही मुझे सारी संवेदनाओं को फ्रीज करना पड़ा था। बार-बार चकनाचूर।

मैं नहीं चाहता था कि मैं हर बार की तरह इस बार भी अजगर का एक निवाला मात्र सिद्ध होऊँ।

और न तर्क-कुतर्क में उलझना चाहता था। तुम अपने रास्ते भले, हम अपने रास्ते। मैं या कोई भी कब तक झक-झक करता रहेगा! वही तर्क, वही मुद्राएँ, यह शख्स सुनता रहेगा बीच-बीच में यह कहता हुआ कि 'हमारा भी वक्त आएगा रे लाला! हम भी बता देंगे कि हम क्या हैं।'

और यह वक्त पिछले 25 वर्ष से वहीं खड़ा है, लेकिन उनकी सेहत पर क्या असर पड़ा है। असर पड़ा है माँ पर, पिताजी पर और कुछ छींटे हम सब पर।

'दाढ़ी बढ़ाकर मस्त पड़ा रहता है। ऊपर से देशी घी की मिठाइयाँ, फल। लड़की घुट-घुटकर जी रही है।' पिताजी का रोष उनकी आवाज से जाहिर था।

कई बार तो पिताजी लगभग इन्हीं बातों को इतनी जोर से कह बैठते कि हो न हो, उन्होंने पिताजी की आवाज को अपने कानों से खुद ही सुन लिया होगा। हम सब पिताजी को टोकते, 'धीरे! धीरे!!'

'धीरे-धीरे क्यों? मैं टुकुर-टुकुर देखता रहूँ। आस न औलाद। दो पेटों को भी नहीं भर सकते। किसके पास है लाखों तुम्हारे कर्ज चुकाने को! बेचो! कोठी बेचो, तुम्हारे बाप बेचने के लिए बनाकर गए थे।'

असर हो तो हो, अंदर से; ऊपर से नहीं। वरना उनकी पैसा माँगने की फिर हिम्मत न पड़ती। उन्होंने बताया था कि यदि 12-14 लाख का इंतजाम हो जाए तो उनकी कोठी बिकने से रुक सकती है, वरना बेच देंगे।

'वरना बेच देंगे।'- यह बात उन्होंने इस रूप में हम भाइयों तक पहुँचाई थी मानो बहन की इज्जत बेचने की चुनौती हो।

कोठी, जिसे उनके पिता ने तीस साल पहले बनाया था - हू-ब-हू ठाकुर राम सिंह की कोठी का मॉडल थी।

वैसे ही दो बड़े-बड़े कमरेनुमा तहखाने, तहखाने या बड़े हाल, रोशनी के पूरे इंतजाम के साथ। जमीन के अंदर, जिन्हें देखकर हम सब बहनजी के यहाँ से लौटते ही सबसे

पहले उन्हीं की चर्चा करते - पैसा, खजाना रखने के लिए बनाए गए थे। दो प्रवेशद्वार अलग-अलग। दो पूजागृह, चार कमरे इधर, चार उधर। किनारों पर चारों तरफ आदमी के सिर के बराबर ऊँची बाउंडरी। दोनों तरफ से बड़ी-से-बड़ी गाड़ी जितना चौड़ा, लोहे का दरवाजा। किनारों पर चमेली की बेलें, पपीते की कतारें, किनारे-किनारे। बीच-बीच में नीबू के पेड़ जो हमारे देखते-देखते खूब फल देने लगे थे।

और ऊपर की मंजिल का पूरा इंतजाम भी ठीक वैसा ही। लोहे के सरिये निकले हुए, जिस पर आगे रातों रात वैसा ही स्ट्रक्चर आसमान की ऊँचाइयों तक खड़ा किया जा सके; अगली - उससे भी अगली पीढ़ियों के लिए।

लेकिन वह कोठी पिछले 25-30 वर्ष में भी वैसी ही काली बनी हुई है।

पूरा ढाँचा वहीं और वैसा ही खड़ा था, जैसा उनके पिताजी छोड़कर गए थे। एक खास पोखर की चिकनी मिट्टी से बनवाई गई, सिर्फ ईंटों का बना और सीमेंट चूने में चिना। इतनी मजबूती से रखी नींव का ही नतीजा था कि बिना सीमेंट के पलस्तर के भी उस पूरी इमारत पर कोई आँच तक नहीं आई थी। यहाँ तक कि तीस बरस से देखते-देखते वह कोठी शाहजहाँ के लाल किले-सी आभा देने लगी थी। और अब उसी कोठी के बिकने, नीलाम होने की बातें सुनाई पड़ रही हैं। वरना रास्ता क्या है 20-25 लाख के कर्जे को चुकाने का? किसी काम-धंधे में गँवाया होता तो भी ठीक था। बैठे-बैठे ही इतना कर्जे!

मेरी स्मृतियों में वे जब से हैं, उनमें या तो उनका भोजन है या भजन।

उनके आने से पहले ही कयास लगने शुरू हो जाते। तैयारी भी। यदि बहनजी वहाँ होतीं तो वे चुपचाप इंतजाम में जुट जातीं। 'आजकल वे सिर्फ एक वक्त ही खाते हैं, कुछ फल और मिठाई-मिठाई भी शुद्ध खोये की। देखकर लाना। आटे के हाथ न लगे।'

एक मिठाई लेने जाता। दूसरा केले लेने। सस्ते जो थे।

माँ दूध-घी के इंतजाम में लग जाती। बच्चों के दूध में पानी मिला दिया जाता। कभी-कभी सारे दूध में भी। यह देशी प्रबंधन था, लेकिन तभी जब बहनजी आस-पास नहीं होतीं।

ओवर आल इंतजाम बहनजी देखतीं - बहुत गरिमापूर्ण मगर आखेटक ढंग से, न पीहर वालों को बुरा लगे, न उनके सम्मान में कमी। आखिर दामाद हैं और दामाद भी बड़े और छोटे जैसे नहीं जो कुछ भी खा लें, 'इन्होंने तो कभी तेल या डालडा देखा तक

नहीं है। घर में आ नहीं सकता। एक-एक मिठाई उसी हरी पर्वत की दुकान से आती है। इनका डिब्बा अलग रख लेता है।' बहनजी आतीं तो हमें भी यही देशी मिठाई खाने को मिलती। हम भी दोस्तों में बताते बहनजी की देशी घी की बातें। उनके ठाठबाट - उन दिनों उनके ठाठबाट थे भी-दो-दो गाड़ियाँ, कारखाना, होटल, ट्रांसपोर्ट...

कभी-कभी बहनजी को मुँह खोलना भी पड़ जाता। ये कह रहे थे कि हमें चाहे आधा गिलास ही दो, पर पानी वाला दूध नहीं चहिए, 'कहाँ अधऔटा पीने वाले और कहाँ आधे-आध का पानी', वे मुस्कराकर कहतीं। दाँतों के बीच फँसी जीभ की मानिंद।

माँ का चेहरा और सूख जाता। कुछ न कहने की पीड़ा में। कुछ ज्यादा न कर पाने के दर्द में।

कभी-कभी वे कोरचा के जमा पैसों से बाजार से और दूध मँगवा लेतीं या हंडिया के दूध से ऊपर-ऊपर से उतारकर रख देतीं, बहनजी को इस हिदायत के साथ कि कहीं बिल्ली न पी जाए। ढककर रख देना! बहनजी कभी-कभी पैसा स्वयं देना चाहतीं, लेकिन माँ के स्वाभिमान को यह भी मंजूर नहीं था। बेटी का पैसा - राम! राम!

छोटे-से स्टूल पर प्लेट-भर पेड़ा या कलाकंद रखा होता और जीजाजी मलाई को जीभ से निगल-निगल कर खा रहे होते। सास से पंखा झलवाते हुए। बहनजी पीछे के कमरे से कभी-कभी देखती-झाँकती।

हम छोटे बच्चे थे। बचपन से ही हमें यह शिक्षा दी गई थी कि सब अच्छी-अच्छी चीजें मेहमानों के लिए ही होती हैं। मेहमानों से बचें तो उनकी।

लेकिन इस प्लेट से कभी कुछ नहीं बचता था बतौर अच्छे आचरण के सबूत, बल्कि और डाला जाता कि शाम को कुछ नहीं खाएँगे, कि एक वक्त ही खाते हैं। दरअसल उनके रहने के दिनों का आकलन करके मिठाई जो मँगाई जाती उसको उतने ही भागों में बाँटकर ऐसे छिपाकर रख दिया जाता था कि बिल्ली-चूहे तो छोड़ो, शैतान-से-शैतान बच्चा नहीं खोज पाता। कभी पुराने कपड़ों के बीच, तो कभी आटे के कनस्तर में। ताले में बंद नहीं क्योंकि उसका पता होना सबसे आसान था।

उनके जाने के बाद ही कभी कुछ चूरा-सा बच्चों को मिलता। बच्चे आनंदित भी होते और लड़ते भी कि उन्हें कम मिली है।

पूड़ी बनती तो थोड़ा-थोड़ा कर जमा किया हुआ मलसिया का सारा घी खत्म हो जाता। और तब दिल्ली से आए पिता दुर्वासा हो उठते कि 'मुझे महीने में एक मलसिया घी भी

नहीं मिल सकता। मैं सारी उम्र अकेला वहाँ आधे पेट मशीनें चलाता हूँ और यहाँ मेरे लिए दो पोटुआ घी भी नहीं।'

माँ न रो पातीं, न कुछ कह पातीं।

आगे माँ ने धीरे-धीरे रास्ता खोज लिया।

जाते वक्त पूरी डलिया भरकर पूड़ी रखनी होती - 'सभी कहते हैं पीहर से आई है, क्या-क्या लाई है, ये बड़ी-बड़ी दूर तक इन पूड़ियों को भेजते हैं खूब तारीफ के पुल बाँधते हुए। इनकी मामीजी पंद्रह किलोमीटर दूर रहती हैं। वो तक इंतजार करती हैं। बड़े सिहाते हैं सब कि बड़ी के यहाँ से तो इतना आता है, छोटी के यहाँ से कभी कुछ नहीं।'

इन बातों के बाद कौन माँ अपनी बेटी के लिए बड़ी से बड़ी डलिया का इंतजाम नहीं करेगी! लेकिन छोटी-सी मलसिया के घी से तो काम चलने से रहा। बहनजी की नजर बचते ही कढ़ाई में डालडा मिला दिया जाता। ऊपर-ऊपर कुछ पूडियाँ पर असली घी के छींटे।

तीस वर्षों में भी इस आतिथ्य में कोई अंतर नहीं आया। बहनजी अभी भी रसोई में घुसकर एक बार तो पूछेंगी ही, 'असली घी की हैं न पूड़ियाँ ?'

'आपके सामने ही तो खोला है!' बहुएँ चट से जवाब देतीं। और फिर आपस में खुसुर-पुसर करती रहतीं।

डिब्बा असली अनिक घी का - होता था उसमें डालडा।

न खाने वालों को पता चलता, न उन्हें जो हरी पर्वत से लेकर हिमालय तक की शुद्ध देशी घी की चीजें सूँघकर ही बता देते थे।

आजाद भारत का असली घी नकली लगता है। नकली, असली।

सिर्फ वे ही देशी घी नहीं खाते थे। हमारे लिए उनके रिश्तेदार, मित्र सभी देशी घी खाते थे।

'ये रामगोपालजी हैं। रामगोपाल सारस्वत। आगरे के जाने-माने सेठ। एवन आदमी हैं। आपको पता ही हैं, हमें एवन से कम जिंदगी में कुछ नहीं चाहिए, लाला!'

रामगोपालजी क्या खाते हैं, नाश्ते में क्या लेते हैं, मिठाई कौन-कौन-सी, फल कौन-से, इस सबका विवरण इनके एक-दो पूर्व विजिट में ही पहुँच जाता। फिर भी वे सबसे अलग-अलग कहते जाते - 'भाई हमारा खयाल रखो, न रखो, इनका जरूर रखना। खानदानी आदमी हैं, एवन। आगरे के राजा हैं।'

और बहनजी की वही नियमित ड्यूटी। तैनात।

जीभ निकाल-निकालकर वे और उनके दोस्त होठों से मलाई चाटते। सुड़-सुड़ पीते दूध। बच्चे देखते रहते।

उनका देखना अनिवार्य था, क्योंकि उन्हें वहाँ पंखा झलने के लिए, गिलास हटाने के लिए, मिठाई और लाने के लिए या कोई और टहोका उठाने की तैनाती मिलती थी। न खेलने जाने की इजाजत थी, न कहीं और जाने की।

उन दो-चार दिनों में न भैंसों को तसल्ली से सानी मिलती, न खेतों को पानी।

'तुम साले हमारे लिए दो-चार दिन नहीं दे सकते। मत जाओ स्कूल। एक दिन में क्या हो जाएगा?'

सबसे ज्यादा कमर झुकती माँ की। काम, बेटी की भावनाओं का खयाल, परदेश में रह रहे पति के लिए बूँद-बूँद बचातीं घी, ललचाते बच्चों को कभी-कभार प्लेट में बचा कोई कतरा देतीं और जब ये लोग फिल्म देखने निकल जाते तब जाकर खेतों का काम। गाय-भैंस को सानी।

कहीं इसी काम के छिपे वजन ने उन्हें कमर का कैंसर न कर दिया हो!

चुपचाप अंदर ही अंदर रिसता फोड़ा, जो जब फटा तो सीधे स्वर्ग ले गया। दो महीने से कम में ही। उन्होंने बताया भी तभी जब पूरी तैयारी कर ली थी। सोचा हो, जब उम्र-भर इस दर्द को पीती ही रही हूँ तो अब भी क्या बताना!

हम सभी ने पिक्चर हॉल पर अपनी पहली फिल्में इन्हीं की बदौलत देखी थी। किसी की पहली फिल्म 'आँखें' थीं, किसी की 'दस लाख', किसी की 'जंजीर' किसी की 'धर्मा'। उनकी रईसी में बच्चों को खूब लुत्फ आता। बारी-बारी से इंतजार करते हम उनके आने का। फिल्म देखने जाने का।

अगली बार उनके साथ ससुराल आने वाले दूसरे मित्र होते। ससुराल से आए सामान या वसूले गए सम्मान के साथ ही इनकी बुकिंग हो जाती थी। 'हम भी देखें कुन्नू उर्फ एम.ए. की ससुराल।'

एक कारण और भी था। अगली बार तक रामगोपाल, रावण गोपाल हो जाते थे। 'साला हरामी निकला! उसकी बातें छोड़ो, ये सेवा सिंह हैं, ठाकुर सेवा सिंह, असली राजपूत हैं। असली राजपूत आगरा में ही हैं। शाहजहाँ से इन्होंने ही टक्कर ली थी। ये न होते तो आज आगरा में एक भी हिंदू नजर नहीं आता। सब मियाँ ही मियाँ होते। ये ताजमहल भी एक राजपूत राजा ने बनवाया है। देखते जाइए। धीरे-धीरे सब हमारी हो जाएँगी। ये तो इन कांग्रेसियों ने अंग्रेजों से मिलकर घपला किया हुआ है। अब उठ रहा है परदा।'

खाना-पीना साथ तो दान-दक्षिणा भी। ये कौन बार-बार आए बैठे हैं। बड़ी मुश्किल से आए हैं। इन्होंने जब आप सबकी तारीफ सुनी तो बोले कि एक बार तो मैं भी जाऊँगा, भाभीजी, आपकी जन्मभूमि देखने।

यानी कि इक्यावन इन्हें तो इक्यावन ही उन्हें।

किसी ने उन्हें कभी झूठ-मूठ को भी मना करते नहीं देखा।

माँ पैसे देकर जब उनके पैर छूतीं तो दोस्त समेत वे खंभे-से खड़े रहते।

एक हक के-से अंदाज में।

हिंदू धर्म की परंपराओं का अपमान धर्म का अपमान होता है - वे सभी ऐसा मानते थे।

ये असली राजपूत, आगरा के सेठ, एशिया के सबसे बड़े डॉक्टर - जो किसी-न-किसी बहाने हमारे घर को पवित्र कर चुके थे - आगरा में दूर से सलाम लेते देते। पंडितजी! ठाकुर साहब! बिहारीजी की कृपा है! अपनी-अपनी दुकान से। किसी की टेलरिंग की दुकान थी। किसी का जनरल स्टोर। किसी ने अभी-अभी होटल खोला था, साइकिल की पंचर की दुकान बंद करके।

इनके घर पर इनके दोस्तों को किसी ने कभी आता नहीं देखा।

'भई, हम दोस्ती को घर से दूर रखते हैं। हमें पसंद नहीं। दूर से राम-राम, श्याम-श्याम, आगरे के लोगों को आप मत सीधा समझिए! बड़े हरामी हैं। यही सेवा सिंह, ठाकुर राम सिंह के घर आता-जाता था। उसकी लड़की को भगाकर ले गया।

ठाकुर साहब की आँखें खुली की खुली रह गईं। तब से हमें किसी साले पर यकीन नहीं। कब, कौन हरामी बन जाए, किसी को नही पता रे, लाला।'

'शादी तो की न सेवा सिंह ने उससे?'

'की क्या, करनी पड़ी! जूते पड़े सो अलग। भाई जान! जमाना इतना सीधा है नहीं, जितना तुम समझते हो। और बोलो क्या हालचाल है?'

तब तक मैं बड़ा हो गया था। शादीशुदा भी।

'आपकी पत्नी तो नौकरी करती हैं? क्या जरूरी है नौकरी करना? बीवी की कमाई खाते हो, बेटा!'

मैं खाना खा रहा था। मेरा कौर हाथ में ही अटक गया। 'जब पढ़ी-लिखी है तो क्या बुराई है।'

'बुराई की बात नहीं, अपना-अपना विचार है। बहरहाल, हमें पसंद नही अपनी बहू-बेटियों का नौकरी करना, पंजाबियों की तरह।' उन्होंने फतवा सुना दिया। बहनजी न-न करने के बावजूद एक पराँठा और रख गईं।

'खा ले साले! बहन के हाथ भइया, सास के हाथ जमइया। हम लक्ष्मी को घर से बाहर नहीं निकलने देते। दस तरह के लोग, दस तरह की बातें। 'आपकी बहनजी घर से बाहर नही निकल सकतीं। अरे, हम मर्द किसलिए हैं। हमें बताओ आपको क्या चाहिए। हम हैं, नहीं हैं तो, नौकर हैं। ये निकलेंगी तो हमारे साथ ही। हफ्ते में एक फिल्म कम-से-कम। नई से नई। हम दोनों के लिए। पहले शो की टिकटें हमारी। अब ये जातीं नहीं हैं। हम अकेले ही देखते हैं।'

'टिकट आ गई, भाई साहब! आज भाभीजी भी साथ जाएँगी। तीन से छह।' बिहारीजी, उनके छोटे भाई शायद अभी-अभी हगकर खाए थे और खैनी हथेली पर रगड़ रहे थे। 'हमने आपका भी ले लिया है, साले साहबजी।'

'अरे, इसका नहीं लेते तो इसकी बहिनयाँ तुम्हें जाने देतीं - हाय मेरा भइया, हाय मेरा भइया!'

बहनजी को फख्र हुआ। 'अच्छा, मेरे भाइयों के लिए तो आपने बड़े पिक्चर हाल बनवाए हैं।'

'लेकिन मैं तो आज नहीं जा पाऊँगा, सुभाष आएगा।' मुझे बताना पड़ा।

'देख भाई, तुम अपनी बहन के यहाँ आए हो। उस पुलिसिये सुभाष के यहाँ तो नही। उसे मना कर दो फोन पर। तुम आज नहीं जा सकते।'

क्या जवाब दूँ? मैंने उसे पहले ही चिट्ठी डाल दी थी। बरसों के बाद मुलाकात हो रही थी आज।

'मैंने उसे घर आने के लिए कह दिया है।'

तीनों ने एक-दूसरे की आँखों में देखा।

'किस टाइम का कहा था?'

'सुबह, किसी समय आ सकता है।'

'उसे फोन पर मनाकर दो, नंबर है तो ठीक। वरना मैं देता हूँ।' वे फोन की तलाश में जुट गए।

'आ जाने दो। मिलना तो है ही उससे।'

बहनजी ने मुझे बाद में एक कोने में बताया कि 'ये किसी के घर पर आने के सख्त खिलाफ हैं। आगे से तू ही मिल आना।'

'लेकिन जीजाजी तो उसे अच्छी तरह जानते हैं। एक-दो बार उसके थाने में गए भी हैं। आपका ट्रक पकड़ा गया था।'

दोस्त आया। तपाक से भेंट-मुलाकात हुई। 'हमारा ये साला पुलिस इंस्पेक्टर है। हरामी नं. 2!'

सुभाष भी पुलिस में था! 'दस नबरी... जीजा का...'

'हरामी' शब्द उसने कुछ हया-शर्म में छोड़ दिया।

सुभाष को बरामदे से ही बाहर लौटना पड़ा। बिना चाय पिये ही।

हम अलग-अलग गाँव के थे। लेकिन मुझे सुभाष के घर जाकर उसी बेला में दूध मिलता था, जिसमें सुभाष को और में सुभाष से मिलूँ या नहीं, सुभाष की माँ से घंटों बातें करके लौटता था।

जब तक मैं सुभाष को नजदीक के चौराहे तक छोड़कर लौटा वे और बिहारीजी जा चुके थे। 'चले गए? कब तक लौटेंगे?'

'शाम तो हो ही जाएगी, तू बैठ, मैं चाय बनाकर लाती हूँ।'

मन तो हुआ, पूछूँ - 'बहनजी! क्या यह चाय सुभाष के साथ नहीं पी जा सकती थी? आपके जानने वाले रईस, राजपूत, एवन, जिगरी हैं, और हमारे लफंगे, हरामी? क्या आज तक कोई हमारे नाम से आपके पास आया है? और इसके पास तो अपने काम से आप स्वयं गए भी थे! आपको डर लगता है कि कहीं रोज-रोज घर आने के लिए हिल न जाएँ।'

पर गुस्से को निगल गया। ये बेचारी क्या जवाब देंगी। 'क्या काम है ऐसा बिहारीजी का? बड़े काँटा हो रहे हैं। गाँव जब आते थे तो कैसे चीते की तरह अपनी बेल्ट को चमकाते फिरते थे।'

'बड़ी मुसीबत में हैं आजकल। तेरे जीजाजी ने कुछ नहीं बताया तुझे? एक अच्छी-सी लड़की की तलाश है - शादी के लिए।'

'किसके लिए?'

'इन्हीं के लिए! इतना बड़ा बिजनेस है, सब कुछ है, लेकिन कोई लड़की ढंग की नहीं मिल रही।'

'लेकिन इनकी तो शादी हो गई थी! आपने ही बताया था कि बहुत रईस घर की है। आप सब दिल्ली खरीदारी करने आए थे।'

'अच्छी नहीं निकली। धोखा हुआ इनके साथ। उस लड़की के किसी के साथ संबंध थे। इन्होंने बहुत समझाया, अपने पीहर जाती थी तो आती ही नहीं थी। हारकर इन्होंने छोड़ दिया। सारा जेवर भी ले गई। इन्होंने भी सोचा, ले गई तो ले जाने दो। घर की इज्जत तो बची।'

'तलाक हो गया?'

'तलाक तो नहीं हुआ। वो अपने घर है, ये अपने घर हैं। उसे वहीं सबके सामने जलील किया, ये भी साथ थे।'

'लेकिन शादी कैसे कर सकते हैं ऐसे, जब तक तलाक न हुआ हो! कल को वो मुकदमा दायर कर दे तो?'

'छोटी ने तो कर रखा है। अलीगढ़ वाली ने, विष्णु के खिलाफ। '

मैं झटका खा गया, 'क्यों? उसके साथ क्या हुआ?'

'छोटी ने मुकदमा कर रखा है तलाक का कि मेरे साथ अत्याचार करते हैं। वो तो और भी कुंटाट निकली। कोर्ट में अपना केस खुद लड़ती है। वकील जो है! और तो और, उसने तो वृंदावन वाले ताऊजी, ताईजी की भी पुलिस में रिपोर्ट कर दी थी। दो दिन हवालात में रहना पड़ा। फिर ये भागे-दौड़े तब कहीं इज्जत बची। तब से इन्हें ये दोनों बहुत मानते हैं। ताऊजी भी कहते हैं, जो कुन्नू कहेंगे, वही होगा, शादी हो, जमीन का बँटवारा, जो ये कहेंगे, वही होगा। पिताजी से पूछकर देखना, उनकी जानकारी में हो कोई लड़की। बड़ा अच्छा घर है।'

कितना अच्छा घर है जिसमें दोनों की दोनों बहुओं को भागना पड़ा! और ऐसे आरोप वे लफंगे लगा रहे हैं जिनकी हरकतें सारे मथुरा-वृद्धावन में कुख्यात हैं!

जब तक ये लौटे, घड़ी रात के नौ पर पहुँचने की तैयारी में थी। हल्की-फुल्की दुआ-सलाम के बीच उन्होंने कपड़े बदले और अपना आसन लेकर ऊपर चले गए।

'खाना?'

'खाना छोड़े तो महात्माजी को दो वर्ष हो गए।' बिहारी ने बताया। 'बाबूजी कहते हैं, उन्होंने इतना पक्का आदमी नहीं देखा। तभी तो जो मंत्र उन्होंने भाई साहब को बताया है वह हमें भी, अपने बेटों तक को नहीं बताया। कहते हैं, तुम तो सब नालायक हो। मंत्र का ही असर है कि दो साल बिना खाना खाए हो गए।'

'कहते हैं, मेरे अंदर शक्ति आ रही है।' बहनजी ने जोड़ा।

'और हम बताए देते हैं कि इसी मंत्र की शक्ति से भाभीजी के लड़का होगा और जल्दी ही। बाबूजी बताते हैं कि आज तक खाली नहीं गया यह मंत्र।'

मैं उत्सुकतावश ऊपर देखने गया। वे भूत-से, छत के एक कोने से दूसरे कोने पर चहलकदमी कर रहे थे।

रोजाना की यही दिनचर्या है इनकी-बरसों-बरसों से।

जब तक पिता थे, साबुन की फैक्टरी में जाते थे। सामान बंटवाने, माल को लदाने, हिसाब-किताब... कुछ हिसाब-किताब घर पर भी करते।

फिर आए एक से एक बड़े ब्रांड साबुन के। लक्स, कैमी, हमाम, नींबूवाला, इत्रवाला। बड़े-बड़े देशी कारखाने बंद हो गए, इनकी तो बिसात ही क्या! फैक्टरी में अभी भी बड़े-बड़े टब, पतीले, सांचे अटे पड़े हैं। रामनिवास वापस घर चला गया। सत्तू को टीबी हो गई। कंछी और फकीरा बराबर में नीम के पेड़ के नीचे चारपाई बुनते हैं।

'फिर ठाकुर क्यों सफल रहा?'

'सब समय का फेर है! उसका साबुन बिक रहा है, हमारा नहीं बिकता। सब कुछ वही है। बल्कि वो बेईमानी भी करता है। चरबी डालता है। क्वालिटी हमसे उन्नीस ही होगी। उसके पास पैसा है, प्रचार है। चिड़ियाछाप के बोर्ड देखे होंगे तुमने। अपनी-अपनी किस्मत। बड़ी कंपनियों के साथ मामला पट गया।'

'ठाकुर के साथ जो केस चल रहा था?'

'अभी भी चल रहा है। तारीख पड़ती है। वो उसे और आगे बढ़वा देता है। उसने हमारे वकील को भी फोड़ लिया। आप क्या कर सकते हैं? पूरे नब्बे हजार दबा गया। कोई मामूली रकम है! 1970 के नब्बे हजार का मतलब आज पाँच लाख है। और उतने ही हमने मुकदमे में फूँक दिए... लेकिन हमारा भी समय आएगा। हमारे ताऊजी कहते हैं, उसके यहाँ न्याय है, भले ही देर से सही। हम तुम्हें एक और बहुत बड़े योगीजी, संत पुरुष से मिलवाएँगे। देखोगे तो देखते ही रह जाओगे। एवन संत हैं। सिद्धि हासिल है उन्हें। उनकी खोपड़ी से रोशनी निकलती है। वो हमें मिला था गंगोत्री में। ऐसी सर्दी में नंगे बदन। देखा था लक्ष्मी! हम इतने कपड़ों में भी तिनके-से काँप रहे थे। वो ऐसे बैठा था मानो कुछ हुआ ही न हो। ऐसा-वैसा संत नहीं था जिनका तुम मजाक उड़ाते हो। लक्ष्मी को देखते ही कहने लगा, 'देवी! इस साल के अंत तक तेरी गोद भर जाएगी और होगा भी लड़का।' यह उसी की मर्जी है कि आजकल इन्हें बच्चे इतने प्यारे लगते हैं। पूछो, इनसे पूछो तो! ये गोद लेने को कह रही थीं। मैंने कहा, नहीं, उस संत पुरुष को हमने तो नहीं बताया था। लड़का होगा तो अपना ही। तुम क्यों चिंता करती हो!'

बहनजी बैठी-बैठी गाय-सी गरदन हिलाती रहीं।

'भाई साहब, इसीलिए हम दिल्ली नहीं गए इस बार।' वे कुछ नाराजगी के स्वर में बोले। इनकी माँ ने किसी डाक्टर को दिखाया था। सब ठीक बताया। और हम आपको बताएँ, हमारे अंदर भी कोई नुक्स नहीं है। बस, थोड़ा समय का फेर है।

'डॉक्टर वीणा गुप्ता कह रही थीं कि आपका परीक्षण करके ही अंतिम रूप से कुछ बताएँगी।'

'आप समझते हैं, आगरे के डॉक्टर घटिया हैं? इन्हें कुछ नहीं आता! आपके दिल्ली से भी इनके पास आते हैं। हमें पता है, कोई कमी नहीं है हमारे अंदर। जो इलाज कराना है, अपनी बेटी का कराओ। पिताजी को बता दो, अपनी अम्मा को भी।'

'इलाज से पहले तो टेस्ट है! किसी डॉक्टर की रिपोर्ट तो होगी आपके पास? उसे दे दीजिए। उसे ही वीणा गुप्ता को दिखा देंगे। जरूरत हुई तो जब आप दिल्ली आएँगे तब कंसल्ट कर लेंगे।'

देखो! न हमारे पास रिपोर्ट है, न हम देंगे और न हम दिल्ली आएँगे। आप दिल्ली वाले समझते हैं कि आप ही दुनिया में समझदार हैं।' वे न जाने क्यों खिसिया रहे थे।

'वो बात नहीं है। आज हम जिस युग में पहुँच गए हैं वहाँ कुछ भी मुश्किल नहीं है। पता तो चले कि कमी कहाँ है? उसका इलाज तभी तो शुरू होगा। आप बीस वर्षों से एक संत का, दूसरे का, तीसरे का इलाज कर रहे हैं। भजन-संध्या अलग, लेकिन कम से कम एक बार तो इन डॉक्टरों को भी आजमा लें।'

'अच्छा, छोड़ो इन बातों को। न हम इस पर बहस करना चाहते, न अपने बिजनेस पर, समझे। और सुनाओ! क्या हालचाल हैं? कौन-सी पार्टी जीतेगी इस बार? क्या कहते हैं तुम्हारे अखबार?'

अचानक ट्रक में बैठे किसी ने ब्रेक लगा दिए हों जैसे।

'कोई भी जीते, क्या करना! और क्या अंतर है उन सभी में? हर साल वोट देते-देते जनता और परेशान है।'

उन्हें जवाब अपने माकूल नहीं लगा। उन्होंने बात को एक मोड़ और दिया, 'पूजा के लिए कोई लड़का बताओ। अच्छा-सा इंजीनियर हो। हो कहीं भी - सरकारी, प्राइवेट? हमसे उस लड़की ने इच्छा प्रकट की है, वैसे ही बातों-बातों में कि इंजीनियर से शादी करना पसंद करेगी।'

मरने के बाद स्वर्ग जाने और पढ़ने में डॉक्टर-इंजीनियर बनने की इच्छा हमारी आत्मा में मानो गोद दी जाती है। लड़कियों की शादी के स्वप्नों में भी यह हो तो क्या आश्चर्य!

अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि आजकल बी.ए. यानी कि इनके छोटे भाई के साथ संबंध ठीक हैं, वरना सबसे ज्यादा संकट हमारा होता। हम मिठाई लेकर जाते, उनके लिए भी। चेतावनी मिलती कि उधर देखना भी नहीं। 'उसका भाई अभी आया था, बोला तक नहीं। आप ही क्यों जाओ।' अगली बार न ले जाते तो तुरंत बाजार दौड़ना पड़ता और वे खड़े होकर सबके पैर छुवाते, क्योंकि पिछली बार उनके भाई ने भी छुए थे।

'क्या किया है उसने?'

'बी.एस.सी. सेकंड डिवीजन। पढ़ने में अच्छी है।'

जो थर्ड डिवीजन में पास हुआ हो उसे सेकंड कितनी बड़ी सीढ़ी लगती है!

'तब तो उसे आगे पढ़ाइए। अच्छा है, एम.एस.सी. करे। उसकी पढ़ने में रुचि आप बता रहे हैं।'

'अब नहीं पढ़ाना, बस।' उन्होंने गरदन से खंभे का-सा निश्चय बताया।

'क्यों?'

'बस यूँ ही, जो एम.एस.सी. का फायदा है वही बी.एस.सी. का है।'

'आपकी बात सही है। लेकिन मैं डिग्री के लिए नहीं कह रहा। मेरा कहना है, यदि वह पोस्ट-ग्रेजुएट हो जाती तो टीचर वगैरा बनने में सुविधा रहती।'

'आपको पता ही है, हम लड़कियों के नौकरी के पक्ष में नहीं हैं। अच्छा, इंजीनियर के क्या रेट हैं?'

'इंजीनियर? कैसा इंजीनियर? कंप्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स, सिविल, मैकेनिकल और कहाँ का? आंध्र का, यू.पी. का, बिहार का, केरल का आई.आई.टी., आर.ई.सी...और सरकार में या प्राइवेट में...'

प्रश्न के इतने विस्तार से उनकी आँखें फैल गईं। 'इसीलिए तो आपसे पूछ रहे हैं। भई, हमारा तो यह क्षेत्र है नहीं। बताना। कोई कमी नहीं रखेंगे।'

'बताऊँगा, लेकिन इंजीनियरों, डॉक्टरों के साथ ओवरसियर आदि भी देखते रहिए। यहाँ तो हर आदमी को चाँद चाहिए!'

'वो तो बाद की बात है, तुमसे कहा ही इसलिए है कि तुम्हारी जान-पहचान में कोई हो...'

'हमारी विदेश जाने की इच्छा है।' मुँह में रसगुल्ला रखते हुए वे बोले।

क्या जवाब दें? अभी बात चल रही थी कि बैंक किन शर्तों पर पैसे देते हैं और इन्हें विदेश-भ्रमण की इच्छा हो रही है। चार्वाक का दर्शन यही है न - ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत!

'आपका कोई जानने वाला नहीं है अमेरिका, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया में? बस, हम चाहते हैं कि बैग उसके यहाँ रख दें। और कोई कष्ट नहीं देंगे, घूमेंगे हम अपनी मस्ती से। क्यों?'

क्या बात है! सारा हिंदुस्तान ऐसे ही सोचता है - देश में भी, विदेश में भी! एलटीसी लें या अपने बच्चों को परीक्षा दिलाने जाए। बैग रखने को जगह मिल गई तो खाने की पूछेगा। लेकिन मैंने बात को टेढ़ा कर दिया, 'लेकिन आप खाएँगे क्या? वहाँ तो बहुत कम चीजें 'वेज' होती हैं।'

'तब तो, लाला रे, तुम्हें कुछ नहीं पता। हम बताते हैं, जितना शुद्ध जूस, मक्खन, फल, मेवे वहाँ मिलते हैं उतने यहाँ भी नहीं।'

'लेकिन पैसे भी वहाँ डालर में लेते हैं।'

'लें, कौन मना कर रहा है! दुनिया तो देखनी ही चाहिए। हमारा बस यह समय निकल जाए, पाँच साल बाद बात करना। हम शुरू करेंगे जापान से, अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी होते हुए आस्ट्रेलिया।' वे दीवार पर लटके मानचित्र को गौर से देखने लगे।

'कोई पहचान वाला होता है तो भटकना नहीं पड़ता। वो गाइड कर दे हमें, हमें और कुछ नहीं चाहिए। सिर्फ देखना चाहते हैं - आखिर इन्होंने तरक्की क्यों की? कैसे की? भई, दुनिया देखनी भी चाहिए, क्यों?'

'बिल्कुल! एक-दूसरे को देखकर ही तो समाज आगे बढ़ा है। विकास का पहिया इन्हीं जानकारियों से सारी दुनिया में आगे बढ़ता है।'

'फिर हम पीछे क्यों हैं? जबकि हमारे इंजीनियर, डॉक्टर अमेरिका-इंग्लैंड में सबसे आगे हैं? क्लिंटन भी डरता है तो हिंदुस्तानियों से ही डरता है। हर टॉप पोस्ट पर ये बैठे हैं।'

उनकी इसे जानने में उत्सुकता थी या रविवार होने के नाते वे मेरे समय को मिलकर काटना चाहते थे, मैं नहीं समझ पाया। लेकिन मेरे मन में कहीं न कहीं उनकी जीवन-शैली को केंद्र में रखकर परोक्ष रूप से कुछ कहने की, समझने की, इच्छा जरूर ऐड़ मार रही थी।

'इसका कारण सिर्फ एक शब्द है - 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' जो ईस्ट को ईस्ट और वेस्ट को वेस्ट बना रहा है।'

'तुम जानते हो, हम अनपढ़ हैं! हमें जरा खोलकर बताओ, सरल शब्दों में।' ऐसे मौकों पर उन्हें विज्ञान के एक चेले की मुद्रा में आने में देर नहीं लगती।

'वैज्ञानिक दृष्टिकोण - यानी जो भी मैं कर रहा हूँ, क्यों? हर चीज को प्रश्न से देखना। सेब गिरा पेड़ से तो क्यों? तूफान क्यों आया? यानी कि हर उत्तर पर प्रश्न करना। उसे समझना, फिर आगे बढ़ना। सेब तो करोड़ों साल से गिर रहा था। प्रश्न किया सिर्फ न्यूटन ने - गुरुत्वाकर्षण की खोज! ऐसे ही बने जहाज, तोप, परमाणु बम, दवाइयाँ। ऐसा नहीं कि हमने कुछ नहीं किया। हम उनसे आगे थे - 1000वीं सदी तक। सारा यूरोप असभ्य, बर्बर था, तब तक। फिर जागता है यूरोप जिसे यूरोप का पुनर्जागरण कहते हैं। चुंबक की खोज, दिशाओं की, मसालों की, नाव, जहाज। कोलंबस कहीं गया, वास्कोडिगामा इधर आया। मैगेलन कहीं और। और यह खोज समाप्त नहीं हुई। डार्विन ने पूरी दुनिया का चक्कर लगाया, तरह-तरह के कीट, पतंगे, पेड़ों का अध्ययन किया। बताया कि ईश्वर ने नहीं, सृष्टि का विकास इस धीमी प्रक्रिया से हुआ है। इनसे उनकी ताकत बढ़ी दूसरे देशों पर कब्जा किया। पूरी दुनिया उनके कब्जे में आ गई। और भले ही इस सदी में सब आजाद हो गए उन्हीं की पद्धति की बदौलत, वे आज हमारे मन-मस्तिष्क पर राज कर रहे हैं और हम हैं कि जबसे सोमनाथ पर आक्रमण हुआ - हजार वर्ष पहले, तब भी भजन पर बैठे थे, आज भी इस भरोसे बैठे हैं कि कोई भगवान आएगा, आपको पानी, बिजली, रोटी, कपड़ा, मकान, उद्योग देने। हिंसा, अंधेपन को दूर करने।'

वे सिर्फ टुकुर-टुकुर देख रहे थे। निश्चित रुप से यह जानते होंगे कि ये भजन पर ही अपनी बात लेकर आएगा।

'तो हम क्यों नहीं बन सकते?'

'सही बात कही आपने? उनकी देखा-देखी हमें भी लगता तो है, सोचते भी कभी-कभी होंगे, लेकिन सिर्फ सोचने से थोड़े ही काम चलेगा। करना पड़ेगा, रास्ते में आड़े आते हैं आपका धर्म, जाति, शास्त्र, नियम, गैर-बराबरी, ज्योतिष पुनर्जन्म की बातें। पहले इनको भस्म करो, तब आगे बढ़ पाओगे। कोई अपने जनेऊ को धोए जा रहा है, कोई लोटे को। संत नाम के दिव्य पुरुष किसी कंदरा में बैठे-बैठे फूल रहे हैं। पाप नहीं महापाप है इनका समस्याओं से बचकर भागना और लोगों को भी उनसे भगाने के लिए भजन, भगवान की शरण में धकेलना। गांधी एक शख्स हुआ है जिसने अपनी निजी वैज्ञानिक पद्धति विकसित की - देश को समझने की, उसे बेहहतर बनाने की। आजादी दे गया, आगे का काम हमारा है।'

'मियों को छोड़ गया इस देश की समस्या बनाकर कि बेटा, बढ़ाए जाओ जनसंख्या - फिर एक और पाकिस्तान बनाने के लिए।' उनका गुस्सा बुदबुदाने लगा था।

'यह मानना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण को न मानना है। सारी बीमारियों की जड़ उस डेढ़ पसली के आदमी को माना जा रहा है जिसे दुनिया शताब्दी का सबसे बड़ा आदमी घोषित करने जा रही है। आपको विस्तार से गांधी को पढ़ने की जरूरत है। ढेर सारी किताबें हैं, अखबार हैं। मैं क्या बताऊँ और कितना बता सकता हूँ? आप भी पढ़े-लिखे हैं।'

'यानी कि हमें आप इस लायक नहीं समझते।' मुझे दबोच लिया गया था।

'कल ही गांधी जयंती थी। कुछ लेख थे अखबारों में। आपने पढ़े?'

'देख भाई, हमने अखबार पढ़ना दस साल से छोड़ दिया है, किताब भी नहीं पढ़ सकते। हमारी आँखें भी कमजोर हो रही हैं और अखबारों में ऐसा आता ही क्या है! वही वोट की बातें। कुछ नई बातें हो तो बताओ।'

'अखबार तो रोज नई बातें लेकर आता है। फिर अखबार आप क्यों मँगाते हैं?'

'लक्ष्मी देख लेती है, राशिफल, पिक्चर। बाकी घर के काम आ जाते हैं। आप बताओ, इन मियों का क्या किया जाए?'

'आप कीजिए, आपकी समस्या है ये। मैं तो किसी को मियाँ-वियाँ मानता ही नहीं हूँ। यह मेरे अधिकार में तो था नहीं कि मैं कायस्थ परिवार में जन्म लूँ या ब्राह्मण के घर या वृंदावन बिहारीजी के यहाँ।'

'इन सबको पाकिस्तान भगा देना चाहिए या फिर बनो हिंदू और चुप रहो।'

वे चुप ही तो हैं बेचारे। सबसे ज्यादा गरीब, अपाहिज, अनपढ़। जो चाहे उनको वोट की झोली में डाल लेता है।

'यही तो तुम्हारी गलती है, ये आस्तीन के साँप हैं। हमारी पार्टी आने दो। सब ठीक हो, जाएगा। चीं बोल जाएँगे। सब भूल जाएँगे मक्का-मदीना... खाते यहाँ का हो गाते वहाँ का हो।'

'एक बात कहूँ! आपकी गाड़ी जो नए-नए ट्रांसपोर्ट के धंधे में आपने लगाई है वे सब उन्हीं मुल्कों के पेट्रोल से चलती हैं। पेट्रोल बंद हो गया तो देश वहीं का वहीं खड़ा हो जाएगा। आप जुर्रत तो करें ऐसी।'

'पेट्रोल तो हम अपने पेशाब से बना देंगे। हम मूतेंगे तो वह पेट्रोल होगा। हमारे अंदर वह ताकत है। तुम समझते क्या हो! तू कोई कम मुल्ला थोड़े ही है, साला कहीं का!' उनके दाँत एक हारे-पिटे कुत्ते-से बाहर निकल आए थे।

मैंने ठठाकर हँसने में ही मुक्ति पाई।

'तुम ईश्वर को नहीं मानते?'

'मानता हूँ, लेकिन उससे मदद की उम्मीद नहीं करता। किसलिए मदद? उसने हमें दो हाथ दिए हैं, स्वस्थ पैर दिए हैं, आँखें, नाक, कान... और फिर भी मैं उसे बार-बार बुलाता फिरूँ! नहीं, बिलकुल नहीं। मुझे लगता है, वह इस बात से और प्रसन्न होता होगा कि यह आदमी मुझे बिलकुल तंग नहीं करता। उसे उन लोगों की मदद के लिए तो समय चाहिए, जिनके शरीर ठीक नहीं हैं। कोई अंधा है कोई लूला। हमसे वक्त बचेगा तो वह उन पर ज्यादा ध्यान दे पाएगा। इन अमीरों की आत्मा हिलने लगती है और ये डर के मारे ईश्वर से और जोर से चिपट जाते हैं। क्या आपको नहीं लगता कि ईश्वर की मदद की जरूरत उन्हें ज्यादा है?'

'बिलकुल।'

'तो क्यों उसके पीछे पड़े हो? क्यों दसियों वर्षों से इन कर्मकांडों में लगे हुए हो? मैं तो उस गुरु को भी फाँसी के पक्ष में हूँ जो अपने शिष्यों को ऐसी सीख देता है। इसे व्यक्तिगत स्तर पर मत ले जाइए। पहले आप रात के नौ बजे से बारह बजे तक भजन करते थे। फिर दो बजे तक और अब चार तक। चलो, मान भी लें, लेकिन परिणाम क्या रहा? हर काम हम जो करते हैं उसमें कोई परिणाम की उम्मीद तो करता ही है। नहीं? और वह भी बीस-बीस साल तक। एक पूरी उम्र ही निकाल दी। याद है, बीस वर्ष पहले आपने कहा था, हमारा समय आएगा। अब भी आपके मुँह से ऐसे ही वाक्य निकलते हैं -हमारा समय आएगा। मनुष्य का जीवन इतना सस्ता नहीं है जिसे किसी के भी इशारे पर बरबाद होने दिया जाए। मनुष्य कोशिश तो करता ही है। फल न मिले, न सही।'

'तो तुम समझते हो, हमने कोशिश नहीं की?'

गुस्से के बावजूद मुझे मुस्कराना पड़ा। 'सच बताऊँ! आप रात-रात-भर भूतों की तरह छत पर घूमने - चहलकदमी करने की कोशिश करते हो? देश-भर के संतों-महंतों की चरणरज को माथे पर लगाना कोशिश है? जिसने कह दिया सिर्फ फल ही खाना, सिर्फ दूध ही पीना या सिर्फ बादाम ही खाना! इसमें कौन-सा त्याग है और कौन-सा प्रयास? क्या इन सब चोंचलों से लोगों के लिए आप और परेशानियाँ, उलझन पैदा नहीं कर रहे होते। आप यहाँ हैं इस समय। सारे के सारे बच्चे कह रहे थे कि पता नहीं फूफाजी कब जाएँगे। जिस कमरे में टीवी है, वहीं वे दिन-भर सोते रहते हैं? खाने की बातों को मैं दबा गया ...वरना जो है सो खाइए। हम एक वक्त खाएँगे। और यह खाएँगे और वह खाएँगे। आप जो होते हैं वैसा ही प्रभाव छोड़ते हैं। आप जहाँ भी जाते हैं या रहते हैं, मैंने पूरी फिजा में दो बातें सुनी हैं - आपको खाना क्या है और भजन। भजन से ज्यादा सोना। रात में भजन किया है, बच्चों! दिन में कोई डिसटर्ब नहीं करना। कौन-सा धंधा चलेगा? या कहिए, कौन-से धंधे के लिए आपके पास वक्त बचा? लेकिन मैं इसमें आपका दोष नहीं मानता, उस गुरु का मानता हूँ जो यह सब आपसे करा रहा है। मेरा वश चले तो मैं चौराहे पर उसे फाँसी दे दूँ।'

पंजाब मेल एक घंटा लेट थी। जब तक गाड़ी आई, मेरा सिर गर्म हो आया था। शायद उनका भी।

वे रात के दो बजे आए थे। पहुँच तो गए थे ग्यारह बजे, पर भजन पर थे, इसलिए गाड़ी आई.टी.ओ. पर ही रुकवाकर उसमें बैठे रहे।

सुबह माँ अचानक हालचाल के क्रम में उनसे पूछ बैठी थीं, 'मम्मी की कोई खोज-खबर?'

'मम्मी नहीं, मुन्नी देवी कहो। मुन्नीबाई! कोई खोज-खबर नहीं। जबसे हमारे यहाँ से गई, न हम मिले, न मिलेंगे।'

'अपनी बेटी के पास चली गई थी। वहीं होगी।' माँ किसी जुड़ाव के कारण ही पूछ रहीं थीं।

माँ भूल गई थीं कि इस बीच धरती कितने चक्कर ले चुकी है।

शादी के साल-दो-साल के बाद की ही बात है। घर पर पूरा कोर्ट था। माँ, बहनजी, जीजाजी, उनकी इकलौती चहेती, फूल-सी बहन उमा, हमारी बड़ी बहनजी, इधर-उधर घूमते बच्चे। 'पूछो अपनी बेटी से? क्या हमारी मम्मी इसे अपनी बेटी की तरह नहीं रखतीं? जो बातें हमें भी नहीं बताती, इसे बताती हैं। इतना प्यार तो अपनी बेटी को नहीं किया होगा। सारा जेवर उनका, अपना भी इन्हें दिया हुआ है। आँखों पर रखती हैं, आँखों पर! छोटी बहू इस बात से जलती भी है कि बड़ी को मम्मी इतना प्यार करती हैं। मम्मीजी ने साफ कह दिया, बड़ी बड़ी ही है, और फिर भी ऐसा किया। आपसे पैर दबाने के लिए कह दिया तो क्या बुरा कर दिया? हम खुद दबाते हैं, तो तुम क्यों नहीं दबाओगी? सुबह उठकर बड़ों के पैर छूने से आशीर्वाद मिलता है लक्ष्मी! क्या आपकी माँ ने यही सिखाया है?'

बहनजी बुत बनी बैठी थीं - कटघरे में खड़ी मुजरिम माफिक।

'हमने तो कभी ऐसी शिक्षा नहीं दी। बड़े-बूढ़ों से तो आशीर्वाद ही मिलता है।'

सभी ने माँ के स्वर में स्वर मिलाया।

'बोलो! बोलती क्यों नहीं हो? बताओ हम कहाँ गलत हैं?'

'मैं भूल गई थी।' बहनजी ने मिमियाती आवाज में कहा।

'तुम भूली नहीं थीं। तुमने जान-बूझकर ऐसा किया था। जाकर मम्मी से माफ माँगना, और मम्मी के ही नहीं, तुम्हें हमारी बहन के भी पैर छूने पड़ेंगे, उमा के!'

'हाँ, क्यों नहीं? ननद देवी की तरह होती है।'

पिता के मरते ही 'मम्मी' को 'मुन्नी देवी' बनने में साल-भर भी नहीं लगा। जिस मामा ने मुन्नी देवी को घर में रखने से आना-जाना बंद कर दिया था, उनका आना उसी दिन हुआ जिस दिन उनके बहनोई की चिता में आग लगी।

यह आग एक युग का अंत और दूसरे की शुरुआत भी थी। विशेषकर इनकी 'मम्मी' के लिए।

मामा के कोई संतान नहीं थी, लेकिन संपत्ति अपार थी। राजनीतिक प्रभाव भी। पहले छोटे ने 'मम्मी' को 'मुन्नी देवी' कहना शुरु कर दिया, फिर बड़े ने।

'अब जल्दी ही सब ठीक हो जाएगा, हमारे घर पर यह काली छाया थी। ताउजी ने पत्री देखी है, यह और कुछ दिन रह जाती तो हम बरबाद हो जाते। बिहारीजी की कृपा से बस बच गए हैं।'

वह एक हँसमुख, मीठी जुबान वाली महिला थी। जाति से बनिया, लेकिन पति की सड़क दुर्घटना ने उन्हें भी सड़क पर ला दिया था। पंडित गगनबिहारी के यहाँ बरतन धोती, पोचा लगाती और कभी-कभी खाना भी। बामन-बनिये तो एक ही होते हैं। गगनबिहारी की पत्नी की मृत्यु के बाद मुन्नी देवी के गर्भ की चर्चा सारे चौराहों पर होने लगी। मामा का गुस्सा बेकाबू था - उन्हें अपने भानजों की चिंता ज्यादा थी - विशेषकर इस बनियानी पर जिसने पिछले दरवाजे से उनकी बहन की हैसियत ले ली थी। ब्राह्मण के घर में यह कुकर्म! लेकिन गगनबिहारी ने हिम्मत दिखाई और जाति बिरादरी के बायकाट के बावजूद मुन्नी देवी को वह दर्जा दिया जो सावित्री का था। मामा तिलमिलाकर रह गए। आना-जाना बंद। गगनबिहारी के मरते दम तक मामा को घर में नहीं घुसने दिया गया।

मुन्नी देवी ने भी दोनों बच्चों को अपनी बेटी से बढ़कर पाला। किया तो दोनों ने ही बी.ए. था। पर बड़े को बड़प्पन के नाते एम.ए. का नामकरण मम्मी ने ही किया था। रासबिहारी एम.ए., नंदबिहारी बी.ए.। पर बी.ए. जितना जबान पर चढ़ा, एम.ए. नहीं। कुन्नू ने इसे नियति मानकर स्वीकार भी कर लिया था। और यह फाँक तब तक किसी को नजर नहीं आई, जब तक गगनबिहारी जिंदा रहे।

उनके मरते ही मामा इस फाँक में घुस गया। घाटे की तरफ बढ़ते कारखाने को पैसा चाहिए था। मामा ने पैसा दिया, राजनीतिक प्रभाव के सपने दिखाए और जिस असली माँ को मुन्नी देवी के स्नेह ने भुलवा दिया था, उन स्मृतियों की वापसी की।

'इस बरतनवाली को मैं देख नहीं सकता।' उन्होंने घोषणा की अपनी तुतलाती बोली में।

मुन्नी देवी ने स्वयं यह कल्पना नहीं की होगी कि जिंदगी में अभी इतनी बड़ी करवट और आएगी - स्नेह-शहद कुंभ यूँ बीच सड़क पर उलटा पटक दिया जाएगा।

उन्हें लगभग खींचते हुए बाहर खदेड़ा गया - आरोपों के साथ कि मुन्नी देवी सारा जेवर लेकर बेटी के पास चली गई, कि बदजात थी, कुलच्छनी थी, कि उसी की वजह से सारा धंधा चौपट हुआ।

मामा ने यह कराया। वृंदावन वाले ताऊजी ने मंत्र पढ़े। सतयुग की वापसी पर प्रसन्नताएँ बाँटी गईं।

मेरी स्मृति में अभी भी एक चाय की दुकान है, जिस पर मुन्नी देवी खड़ी चाय बना रही थीं, साठ वर्ष की उम्र में। उत्थान-पतन की अनूठी दास्तान का चित्र।

हम स्कूटर से गुजर रहे थे। मेरे कई रोज के आग्रह के बाद उन्होंने हामी भर दी - 'अच्छा उधर से गुजरे तो बता दूँगा मुन्नी देवी की दुकान। तू भी साले है हरामी!'

क्या कोई मनुष्य इतना गिर सकता है? इतना बदल सकता है? संबंधों को इतना कलंकित किया जा सकता है?

बेटी के यहाँ कितने दिन रह पातीं? उन्होंने अपना ठिकाना फिर बनाया उसी शहर में जो बार-बार उजड़ता-बसता रहा है। मुगलों से आज तक। उनका स्वाभिमान उन्हें फिर राजामंडी ले आया।

कुछ दिनों के बाद खबर मिली कि उमा के आदमी ने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली बेरोजगारी की मार से।

'क्यों? क्या बात हुई?'

हत्या, आत्महत्या किसको नहीं हिलाती!

'हमें यह सब नहीं पता। हमारे यहाँ एक देशी-घी वाला आता है, उसी ने बताया।' चेहरा भावना विहीन भी और सूखा भी।

जिस उमा के नन्हें पैरों को वे अपनी पत्नी से पुजवाना चाहते थे, जिसके पति को उन्होंने अपना बहनोई बनाया था, उसकी इस स्थति को पाँच साल के अंदर ही यह शख्स ऐसे भुलाने की कोशिश कर रहा है।

नौ बजते ही वे अपने आसन को लेकर छत की तरफ खिसक गए।

मुन्नी देवी ने आखिर तंग आकर आगरा छोड़ दिया। कहते हैं कि मामा ने उसके नाम से चोरी का इल्जाम फिर लगाया और गवाही दी उसके इन्हीं दोनों धर्मपुत्रों एम.ए. और बी.ए. ने।

भीगी आँखों से वे वृंदावन चली गईं - अबलाओं की एक मात्र धर्मस्थली। बताते हैं कि जाने से पहले शाम के झुटपुटे में उन्हें किसी ने इसी कोठी के पास देखा था।

क्यों आई होंगी वहाँ वे? अंतिम दर्शन करने?

या अंतिम शाप देने?

जब भी आगरा आना हुआ, उस प्रांगण में बैठते ही इच्छा होती, चुपचाप उनसे मिल आऊँ। जिन पैरों को इतनी बार छुआ था एक और सही। पर नहीं जा पाया। कैसा वात्सल्य-भरा होता था उनका स्पर्श!

वह समीकरण, जिसमें मैं एक व्यंजन था, उसके सारे मूल्य ही मात्र 'क, ख, ग' में बदल गए थे। यदि मैं जाता तो क्या वे मुझे पहचानतीं या चुप लगा जातीं या...? और मैं भी पैर छूता या सिर्फ नमस्ते करता?

कहीं यह मुन्नी देवी का ही शाप तो नहीं है कि जो ईंट उन्होंने जहाँ भी छोड़ी थी उसमें कोई बरक्कत नहीं हुई। न मामा के राजनीतिक प्रभाव से, न वृंदावन-बिहारीजी की कृपा से। और कहीं निपूता रहने का अभिशाप भी तो मुन्नी देवी ने ही नहीं दिया! जिससे ज्यादा मुहब्बत होती है, वही जब धोखा देता है तो आह का शाप भी उसे ही ज्यादा लगता है।

आज वही कोठी बिकने, नीलाम होने की चर्चा में है। और वे चाहते हैं कि यदि आप सभी हर महीने कुछ-कुछ दो तो कर्जा पट सकता है।

'सब कहते हैं तुम्हारे साले तो इतनी अच्छी जगहों पर हैं, उनके लिए क्या मुश्किल है!' बहनजी ने जोड़ा था।

रक्षाबंधन पर सभी भाई-बहुएँ इकट्ठा हुए हैं। आगरावाले भी आने वाले हैं।

'हमारे कोई अपने बच्चे थोड़े हैं! हम उनके ही फलों और देशी घी के लिए अपने बच्चों का पेट गिरवी रख दें!'

'सालों-साल हो गए, हमने तो उन्हें कभी कोई काम करते नहीं देखा। कभी इधर बैठते हैं, कभी उधर।'

'पता है, होटल क्यों बंद कर दिया, क्योंकि रसोइए ने वहाँ अंडे की सब्जी बना दी थी एक ग्राहक के कहने पर। इतना बढ़िया आदमी था, उसे निकाल दिया। फिर कोई मिला ही नहीं। ट्रांसपोर्ट का धंधा चौपट इसलिए हो गया कि पत्री-दिशा देखकर माल बुक कराया जाता था। ग्राहक को डिलीवरी चाहिए या आपकी पत्री! बैठे रहो हाथ पर हाथ धरे। भजन है जो करे जाओ रात में भी, दिन में भी!'

'सारी दुनिया इन्हीं के लिए बेईमान है। टेलर! तो धोखा दे गया। साबुन के सेल्समैन! तो पैसा मार गए। गाड़ी का ड्राइवर! तो भाग गया... कहीं तो विश्वास करोगे।'

'छत पर टहलने से समस्याएँ हल हो जाएँगी। कहते हैं, हमसे यह मत पूछिए कि काम कैसा चल रहा है। कुछ कर सकते हो तो मदद करो। हम वही करेंगे जो हमें करना है! तो अब क्यों खबर भिजवा रहे हैं कि कोठी बिक रही है। बिक रही है तो बेचो। हो जाने दो नीलाम।'

'इनके अपने खर्चों में कोई कमी आई! इतनी तंगी चल रही है, पर खाएँगे फिर भी बादाम, देशी घी की बरफी और दूध। अन्न नहीं खाना। बताइए! बिना अन्न काम चलता है? आदमी सीधे-सीधे रोटी खाए, काम करे। फिर उपर वाले की मरजी।'

'पिछली बार इनको फ्रिज दिलवा दिया था, तो बड़ी बहनजी नाराज थीं कि पिताजी हमारे बच्चों को भी तो कभी कुछ कर सकते हैं। हम क्या गैर हैं! हमारा कोई हक नहीं है।'

'ठीक ही कहती हैं। उनका भी तो उतना ही हक है पिताजी पर। तीनों के तीनों खाली बैठे हैं। न कहीं नौकरी, न कुछ।'

'उनको तो चलो नौकरी नहीं है, इनके पास तो सब कुछ था। कारखाना, कोठी, कामगार, पर बैठे-बैठे सब गला दिया और अभी भी सुधरने का नाम नहीं। 'समय आएगा' - बस यही रट है।'

'अब रिश्तेदारों को और गलाना चाहते हैं।'

'दें, तो पिताजी दें। हमारे पास नहीं है ऐसे फूँकने को।'

'पिताजी के पास ही कौन-सी नवाबी रखी है? जब तक चप्पल घिसकर पत्ता नहीं हो जाती, उसे गाँठ जोड़कर पहनते ही रहते हैं।'

पिताजी इधर से उधर टहल रहे हैं। सुनना भी चाहते हैं बेटे-बहुओं के निष्कर्ष उनकी आवाजें और उससे दूर भी रहने की कोशिश में हैं।

कौन लेने जा रहा है? क्या टाइम हो गया? एक आदमी लेने को चाहिए, एक पहुँचाने को। इतने नखरे तो उनके भी नहीं होते जिनकी नई-नई शादी हुई है। खाली बैठा आदमी इतना नहीं कर सकता कि खुद आ जाए। खुद आने में इज्जत में बट्टा लगता है, घर-घर उधार माँगने में नहीं! कहो तो मुँह फूल जाता है। यहाँ सब नौकरी वाले हैं। किसी को बच्चे को स्कूल छोड़ना है, किसी को दफ्तर पहुँचना है। इतना क्या... अजगर करे न चाकरी, पक्षी करे न काम। दास मलूका कह गए सबके दाता राम!

वो आ गए हैं। बहनजी भी।

मैं जान-बूझकर नीचे जाने की हिम्मत नहीं कर पा रहा हूँ।

क्या पूछूँ? कैसे हैं? वे कहेंगे, ठीक हैं।

'कब चले?'वे कहेंगे, 'शाम को पाँच बजे।'

वे पूछेंगे, 'क्या हाल है?' मैं कहूँगा, 'ठीक हूँ।'

उसके बाद चुप्पी।

उसके बाद कुछ पूछूँगा तो या तो वे चुप रहेंगे या तड़क-भड़क हो जाएगी।

'हमसे इन प्रश्नों का जवाब मत माँगिए। आप कितनी मदद कर सकते हैं?' वे दो टूक कह सकते हैं।

'कुछ नहीं', क्योंकि ...मेरे अंदर वही तर्क बुलबुलाने लगते हैं जिन्हें पिछले दस-पंद्रह वर्षों में मैं उन्हें कहता रहा हूँ। पिछले कुछ वर्षों से तो और मुखरता से।

वे तुरंत उठकर जा भी सकते हैं।

मैं इन सभी बातों को तोल-तोलकर देख रहा हूँ। सोच रहा हूँ - तीन साल बाद तो मिले हैं। फिर वही तकरार। क्या वे बदल जाएँगे? जब अब तक नहीं बदले तो...

बहनजी भी बीमार चल रही हैं। पैर सूज गए हैं। अभी तक जब भी आती हैं, घर के काम में जुट जाती हैं, एक बरतन गंदा मिले तो उसे भी धो देंगी। एक-एक कपड़े को। माँ की बीमारी में जो उन्होंने किया, दुनिया की कोई बेटी नहीं कर सकती - पेशाब कराना, लैटरीन कराना, इंजेक्शन... अपने दर्द को भी छिपाकर रात-रात भर जागतीं।

इनका यही तो सीधापन रहा कि जहाँ भी रहीं, गऊ-सी जिबह होती रहीं।

इन्होंने टेस्ट कराए, उन्होंने नहीं कराए। मंजूर! गोद लेने की बात इन्हें तो स्वीकार थी, उन्हें नहीं। यह भी मंजूर!

जब तक इन्होंने मम्मी जी को मम्मी माना, पैर छूती रहीं। जब मुन्नी देवी हो गई - वह भी मंजूर।

'मेरी तरह तुम भी पालथी मारकर शाम को भजन पर बैठा करो।'

मंजूर!

'घर से बाहर नहीं जाना।'

मंजूर!

'जब तक कोई लेने न आए, पीहर भी नहीं जाना। मरने-जीने में भी नहीं।'

मंजूर!

दुनिया खराब मानी तो इन्होंने भी मान ली। अच्छी, तो अच्छी!

वे अपना विनाश कर रहे हैं, यह उनका चुनाव है। लेकिन कोई और तो हैं उनके साथ! बहनजी न इस लायक थीं न उन्हें बनने दिया गया, जो खुद की भी कभी मरजी करतीं। उन्हें डॉक्टर के पास तक नहीं ला पाईं। शास्त्र-दर-शास्त्र जो उन्हें पढ़ाया गया, उसी की खातिर तो उन्हें मंजूर था यह सब।

पिताजी की आँखों से लग रहा है, वे रात-भर सोए नहीं। कंबल लपेटे हुए इस मजलिस के एक कोने पर आकर खड़े हो गए।

'भाई मेरी बात सुनो! लड़की परेशानी में है। इनका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा। दस-पाँच हजार जिससे जितना भी बने, दे दो। एक फिक्स मेरे पास है। कोर्ट-कचहरी का कुछ काम तो चल जाएगा।'

'जिसे देने हों, खुशी से दें। हमारे पास नहीं है किसी को लुटाने को।' बड़ी भाभी उठीं और तुनककर चली गईं।

पिताजी जिन पैरों से आए थे वैसे ही वापस हो गए।

कमरे में स्तब्ध नीरवता छा गई।

दूर कोने से जीजाजी के खर्राटों की आवाज आ रही थी।